# प्राथमिक स्तर पर भाषा शिक्षण

लक्ष्मी नारायण मित्तल*

**भाषा के बिना मानवीय व्यवहार और चिंतन सम्भव नहीं है। यह बात तय है। हर भाषा का अपना विशिष्ट सामाजिक परिवेश होता है और उस परिवेश से समाज व उसकी संस्कृति को अभिव्यक्त करने के लिए वह भाषा पूर्णतया समर्थ होती है। प्रत्येक भाषा अपने में विलक्षण होती है। बच्चा किसी भाषिक समुदाय का सदस्य होने के नाते भाषा के नियमों को अपने में आत्मसात करता रहता है और उस भाषा से जीवन भर जुड़ा रहता है। भाषा नैसर्गिक वातावरण में सीखी जाती है। धीरे-धीरे बच्चे की भाषा का विकास होता रहता है जिसमें स्कूल मुख्य भूमिका निभाता है। प्राथमिक स्तर पर ध्वनि, पद और वाक्य की दृष्टि से भाषा का समग्र अधिगम शिक्षण का लक्ष्य होना चाहिए। भाषा बच्चे के अनुभवों से जुड़ी होती है। अतः शिक्षक कक्षा व कक्षा के बाहर ज़्यादा से ज़्यादा गतिविधियाँ आयोजित करके बच्चे के अनुभवों द्वारा उसकी भाषा क्षमता का विस्तार का सकता है।**

भाषा हमारे दैनंदिन व्यवहार के केंद्र में है। यद्यपि चिंपैंजी या डोल्फिन कुछ संकेतों को ग्रहण कर सकती हैं, परन्तु जिस प्रकार की जटिल भाषा-संकेतो का प्रयोग मानव करता हैं, वह मानवीय कृत भाषाओं की अपनी विशिष्टता है। संस्कृति और मानव व्यवहार की तमाम गतिविधियॉ बिना भाषा के सम्भव नहीं हैं। यह कहना कठिन है कि पहले चिंतन प्रक्रिया शुरु हुई और फिर भाषा का व्यवहार या भाषा व्यवहार से ही हमारी चिंतन प्रक्रिया को प्रखरता मिली। आज के संदर्भ में यह बात तय है कि भाषा के बिना मानव व्यवहार और चिंतन संभव नहीं है।

भाषा की कोई परिभाषा लिखने से पहले यह जानना ज़रुरी है कि भाषा संकेतात्मक है, अर्थात् जिन ध्वनियों का हम उच्चारण करते हैं वे प्रतीक मात्र हैं। दूसरी बात यह है कि ये प्रतीक उच्चारित होते हैं। भाषा का लिखित रूप गौण होता है और संसार की अनेक भाषाएँ ऐसी हैं जो आज तक

*एच-883, हाउसिंग बोर्ड कालोनी (पुरानी), मुरैना, मध्य प्रदेश 476001

लिपि बद्ध नहीं हुई हैं। वाचिक संकेतों के अलावा आँगिक संकेतों से भी भाव प्रगट किये जा सकते हैं परन्तु वे बहुत सीमित भावों को प्रगट करने की क्षमता रखते हैं। वाचिक संकेतों के बारे में कहा जाता है कि वे अनगिनत भावों को प्रगट कर सकते हैं। 'With A set of finite symbols, they can express Infinite ideas', भाषा के संबंध में तीसरी बात यह है कि इसका (भाषा का) अपना विशिष्ट सामाजिक परिवेश होता है। उस परिवेश के समाज और उसकी संस्कृति को अभिव्यक्त करने के लिए वह भाषा या बोली पूर्णत: समर्थ होती है। इन तीन वर्णित आधारों पर हम भाषा को एक सामाजिक व्यवस्था मान सकतें हैं जो उच्चारण और श्रवण के ध्वंयात्मक प्रतीकों का समूह है। यह तो भाषा की एक बहुत स्थूल परिभाषा हुई और जैसे-जैसे हम आगे विचार करेंगे, भाषा के अन्य लक्षणों की समीक्षा करते जायेंगे। कुछ मोटे तौर पर भाषा निम्न प्रकार से काम करती है—

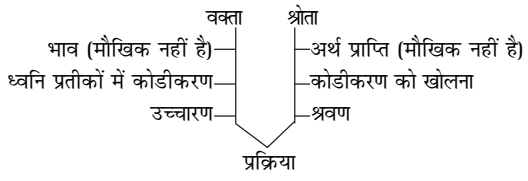


जब बच्चा अपने भाषिक समुदाय में रहकर मातृभाषा का अधिगम करता रहता है तो यह प्रक्रिया स्वत: ही चलती रहती है। मातृभाषा किसे कहते हैं। इस संबंध में किसी शास्त्रीय बहस की आवश्यकता नहीं है। मातृभाषा वह है जो बच्चा पैदा होते ही अपनी पारिवारिक-सामाजिक-सामुदायिक परिवेश में बोलते हुए सुनता है। कहीं-कहीं यह प्रश्न उठता है कि पारिवारिक परिवेश की भाषा और तात्कालिक सामाजिक परिवेश की भाषा में अन्तर होता है। बहुत से बोली क्षेत्रों में ऐसी स्थिति है। वास्तव में मातृभाषा, गढ़वाली, कुमायूँनी, भोजपुरी, मैथिली, बृज, अवधी ही होगी। इस प्रकार की स्थिति में स्कूल, कॉलेज और औपचारिक सम्वादों में भाषा दूसरी होगी। इस प्रकार की स्थिति को समद्विभाषिकता (Coordinate bilingualism) की स्थिति कह सकते हैं जहाँ बालक दो भाषाओं की ध्वन्यात्मक संरचना और उसके व्याकरणिक रूप पर एक साथ अधिकार करता जाता है। जहाँ ऐसी दो भाषाओं (हम भाषा और बोली के विवाद में नहीं पड़ रहे हैं) की व्याकरणिक संरचना और शब्द-कोष लगभग समान होता है, केवल धातु और प्रातिपादकों में लगने वाले प्रत्ययों को छोड़कर, वहाँ इस प्रकार की द्विभाषिकता की स्थिति सरल होती है। इन्हें ही समवर्गीय द्विभाषिक कह सकते हैं। प्राय: हिंदी क्षेत्र के वक्ताओं के साथ यही स्थिति है। भाषा और बोली में क्या अंतर है?

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भाषा और बोली में कोई अन्तर नहीं है। भाषा के बोलने वालों का क्षेत्र-विस्तार अधिक हो सकता है, बोली में भावगम्यता (mutual intelligibility) अधिक गहरी होती है। व्यापार अर्थ, शिक्षा, राजनीति आदि कारणों से किसी भाषा क्षेत्र को विशिष्टता मिल जाती है और वहाँ की भाषा-बोली को सामाजिक प्रतिष्ठा। अत: उस क्षेत्र की बोली को भाषा का दर्जा मिल जाता है। गैर-भाषिक कारणों में भाषा और बोली में यह अन्तर बतलाया जा सकता है कि बोली में ललित साहित्य का अभाव होता है और भाषा के बोलने वाले

सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक या धार्मिक कारणों से अधिक संभ्रांत (high brow) कहे जा सकते हैं। हम विकास शब्द की बहस में नहीं पड़ रहे हैं क्योकि भाषा के बोलने वाले ज्यादा 'विकसित' और बोली के बोलने वाले कम विकसित, यह खतरनाक निष्कर्ष है और गलत पैमाने पर आधारित है। वास्तव में भाषागत विशिष्टा की दृष्टि से बोली अधिक सुगठित और लालित्यपूर्ण लोक साहित्य से भरपूर होती है। (अब आगे हम भाषा और बोली शब्दों में कोई भेद नहीं मानेंगे।) बोली या भाषा के संदर्भ में निम्नबातें जानना भी ज़रुरी है—

- प्रत्येक भाषा कुछ ध्वन्यात्मक नियमों से बंधी है।
- प्रत्येक ध्वन्यात्मक प्रतीकों का उस भाषा में एक ही अर्थ होता है।
- पद और पदार्थ का संबंध स्वैच्छिक रूप से निर्धारित है। परन्तु इसे सामाजिक मान्यता प्राप्त है और प्रत्येक व्यक्ति को किसी पदार्थ के लिए स्वयं पद निर्धारित करने की स्वैछाचारिता नहीं है।
- भाषा मूलत: मौखिक है (उसका लिखित रूप गौण होता है)।
- प्रत्येक भाषा का अपना एक सामाजिक संसार होता है।
- प्रत्येक भाषा जीवन्त होती है।
- प्रत्येक भाषा का व्याकरणिक विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है, अर्थात् बोली का भी अपना व्याकरण होता है और यह कथन नासमझी भरा है कि बोली का व्याकरण नहीं होता।
- प्रत्येक भाषा अपने में विलक्षण होती है।
- प्रत्येक भाषा श्रेष्ठ होती है। किसी अन्य भाषा के संदर्भ में उसे निम्न/निकृष्ट/अविकसित/पिछड़ी हुई नहीं कहा जा सकता।
- व्याकरण मात्र उस भाषा के मानक रूप को बनाये रखने के नियमों का वर्णन करता है।
- भाषा वर्णनात्मक (descriptive) होती है न कि आदेशात्मक (Prescriptive)।
- बच्चा किसी भाषिक समुदाय का सदस्य होने के नाते उस भाषा के नियमों को स्वयमेव आत्मसात करता है और वह भाषा के जीवंत रूप से सरोकार रखता है।

## भाषा का अधिगम

भाषा के अधिगम की प्रक्रिया में बच्चा जब किसी भाषा का अधिगम करता है तो वह दो स्थितियों का सामना करता है।

1. भाषा के नियम उसे भाषा की समर्थता/क्षमता/सामर्थ्य का भान करवाते हैं परंतु हर बच्चे का उस भाषा के निष्पादन (performance) का स्तर अलग-अलग होती है। भाषा अधिगम के जटिल और गहरे नियमों के अंतर्गत बालक सहजता से उन नियमों के आधार पर अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकता है क्योंकि उसने उन नियमों को उस परिवेश में रहने के कारण उस भाषिक समुदाय के रूप में निरन्तर आत्मसात कर सकता है। इन नियमों को बच्चे ने तर्क से नहीं सीखा है अपितु ये नियम उसे अन्त:प्रेरणा से प्राप्त हुए हैं। व्यवहारवादी (behaviourists) मानते हैं

कि बच्चे दोहराकर या वयस्क से सुनकर उसे दोहराते हुए सीखते है। इसी को वातावरणवादी (Environmentalistor) इस तरह कहते हैं कि बच्चे अपने भाषिक समुदाय के वातावरण से भाषा सीखते हैं।

हम कुछ सरल शब्दों में भाषा-अधिगम के संबंध में निम्न बातें कह सकते हैं—

- भाषा अधिगम इसलिए सम्भव है कि प्रत्येक बच्चे में अदम्य क्षमता होती है।
- सभी प्रकार का भाषा अधिगम सामाजिक परिवेश में होता है।
- प्रत्येक भाषा का अपना विलक्षण और विशिष्ट विचारों का संसार होता है। बच्चा उस भाषिक समुदाय का सदस्य होने के नाते अपनी आयु और क्षमता के अनुसार उन विचारों के संसार को भी पकड़ता है और उनकी अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त भाषाकौशल भी प्राप्त करता रहता है।
- भाषा नैसर्गिक वातावरण (informal and natural environment) में अधिगमित होती है।
- प्रत्येक दिन और धीरे-धीरे बच्चे के शब्द-भण्डार का विस्तार होता है। (*एडगर डेल के अनुसार*—कक्षा एक के विद्यार्थी का शब्द भण्डार 3000 शब्दों का होता है और प्रत्येक वर्ष यह शब्द भण्डार 1000 शब्दों की गति से बढ़ना चाहिए।)
- स्कूल में बच्चे का भाषा अधिगम अधिक तीक्ष्ण होता है क्योंकि शिक्षक भी इसमें परिष्कार करते जाते हैं।

## शिशु का भाषा व्यवहार

मनावैज्ञानिक मानते हैं कि जन्म के शुरु के दस या ग्यारह महीने शिशु केवल इशारों से अपने भावों को व्यक्त करता है। शिशु शुरु के दस महीनों में अपने वाक्तंत्र का प्रयोग करना सीख जाता है, वह रोता है, कभी-कभी हँसता है। अगले छः महीनों में वह कुछ ध्वनियों का उच्चारण करने लगता है। इस समय बच्चा एकाक्षरी शब्दों का उच्चारण करता है और शायद माँ शब्द वह सबसे पहले बोलता है। शिशु का संचारात्मक व्यवहार उसके परिवेश के वयस्कों के भाषिक व्यवहार पर निर्भर करता है क्योंकि वहीं से नकल करके शिशु भाषिक व्यवहार को प्रगाढ़ करता है। माँ-बाप शिशु के एकाक्षरी (mono-syllabic) शब्दों के वाक्यों को इसलिए समझ लेते हैं क्योंकि वे शिशु के भाषिक व्यवहार से परिचित होते हैं। ढाई से तीन साल के बच्चे जिस भाषा का व्यवहार करते हैं उसे स्व-केंद्रित (ego-centric) उच्चारण कह सकते हैं। इस उम्र के बच्चे के उच्चारण को आंतरिक-वाणी कह सकते हैं। यानि, वह अपने मन में भाषा के माध्यम से विचार करता रहता है। (यहाँ हम इस पर विचार नहीं कर रहे हैं कि क्या भाषा के बिना विचार करना सम्भव है? या नहीं इस संबंध में लम्बी बहस हो सकती है।) उपरोक्त परिस्थिति में तीन प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं—

(क) नकल और संरचना-संकोच (structural reduction)।

(ख) नकल और संरचना-विस्तार (structural expansion)।

(ग) प्रच्छन संरचना का आगम।

## प्राथमिक स्तर पर भाषा व्यवहार

प्राथमिक स्तर पर भाषा की निम्नलिखित दशाएँ हो सकती हैं—

**ध्वनियाँ**- (1) ध्वनियों को सुनना
(2) भिन्न-भिन्न ध्वनियों के व्यतिरेक को पहचानना
(3) विभिन्न ध्वनियों के उच्चारण भेद को पहचानना
(4) उम्र के अनुसार गलत उच्चारण भेद को पहचानना
(5) त्रुटि-विश्लेषण

**पदिम**- (1) पदिमों को अर्थों सहित पहचानना
(2) शब्द संरचना और अर्थ
(3) विभिन्न प्रसंगों/संदर्भों में शब्दों की पहचान और उनका वर्गीकरण

**वाक्य**- (1) वाक्य संरचना
(2) वाक्य अधिगम
(3) साराँश वाक्यों का व्यवहार
(4) आयु और भाषिक जटिलता के आधार पर वाक्य संरचनाओं की पकड़।

## अवधारणा निर्माण (Concept formation)

प्राथमिक स्तर पर ध्वनि, पद और वाक्य की दृष्टि से भाषा का समग्र अधिगम शिक्षण का लक्ष्य होना चाहिये। इसमें भाषा की अपनी क्षमता और बच्चे की निर्वहन क्षमता की प्रक्रिया महत्वपूर्ण है। अवधारणाएँ अशरीरी होती हैं। शब्द, पदाँश, वाक्याँश या पूर्ण वाक्यों के बिना किसी अवधारणा को शक्ल देना संभव नहीं है। बच्चा किसी शब्द के सामान्य अर्थ को ग्रहण करते हुए उसके अतर्निहित भाव को पकड़कर उस तक पहुचँता है।

बच्चे की भाषा का संबंध उन अनुभवों से है, जिन्हें वह शारीरिक कार्य करते हुए प्राप्त करता है या उन अनुभवों से भी है जिन्हें वह महसूस करता है अथवा अपने परिवेश में देखता हैं। अत: इस स्थिति में शिक्षक कक्षा में नयी परिस्थितियों का वर्णन करके बच्चे के अनुभव के संसार को विस्तार दे सकता है। अत: जितनी ज्यादा गतिविधियॉ कक्षा और सह शैक्षणिक गतिविधियों में कक्षा-इतर होंगी, बच्चे की भाषा क्षमता में उतना ही विस्तार होगा।

भाषा क्षमता के साथ मूल्य बोध भी जुड़ा है। इसके लिए भाषिक समुदाय के परिवेश के समाज की सांस्कृतिक विरासत को दर्शाना चाहिये और बच्चे की सहजता पर पाश्चात्य मान्यताओं के आधार पर अंकुश नहीं लगाना चाहिए।